ISSN : 2277-9949

LITERARY VOICES

A Peer Reviewed Annual Journal of Languages

Vol. 6, 2017

:: Published by ::

Dayanand Arya Kanya Mahavidyalaya,

Jaripatka, Nagpur - 440 014.

Phone No. : (0712) 2631353, 2633233, 2631940

Email : aryawani.ngp@gmail.com

LITERARY VOICES

A Peer Reviewed Annual Journal of Languages

Editors

Dr. Vandana Dixit
Dr. Sujata Chakravorty

Editorial Board

Dr. Chetna Pathak,
DAK Mahavidyalaya, Nagpur.

Dr. Neelam Virani
Gurunanak High School, Nagpur.

Dr. Bipasha Ghoshal,
Asso. Prof. & HOD (Eng.)
DNC, Nagpur.

Ms. Soma Banerjee
Asso. Prof. & HOD (Eng.)
SFS College, Nagpur.

Peer Committee :

Dr. Swati Ganguly
Reader, DEOMEL,
Visva Bharti, Santiniketan

Dr. Aditi Vahia
Assistant Professor
Faculty of Arts
The MS Uni. of Baroda

Dr. Urmila Dabir
Principal
R.K.K. Mahavidyalaya
Jaripatka, Nagpur.

Dr. Priya Wanjari
Principal,
Santaji Mahavidyalaya
Nagpur.

Dr. Vandana Khushalani
Member, Executive Council,
Mahatma Gandhi Antarrashtriya
Hindi Vishwavidyalaya.

Dr. Pramod Sharma
Head, Dept. of Hindi
RTM Nagpur University, Nagpur.

Dr. Sunil Kulkarni
Head, Dept. of Hindi
Maharashtra University,
Jalgaon, Maharashtra

Dr. Anil Dubey,
Assistant Professor, Bhasha Vigyan
Avam Bhasha Prodhyogiki Vibhag,
Mahatma Gandhi Antarrashtriya
Hindi Vishwavidhyalaya.

ISSN 2277-9949

अनुक्रमणिका

हिंदी विभाग

S.No.	Paper and Name of Author	P.No.
1.	प्रौद्योगिकी और स्वतंत्रता – डॉ. वंदना खुशालानी	04
2.	संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी : अभिव्यक्ति कौशल – डॉ. अन्नपूर्णा सी.	05
3.	'हैद्राबाद–कर्नाटक मुक्ति–संग्राम में आर्य–समाज की भूमिका' – प्रा. रंजना पाटिल	15
4.	मानवीय उन्नयन के कवि : पंत – डॉ. हेमांषु सेन,	23
5.	अंचल के काव्य में श्रृंगार वर्णन – डॉ. नीता सिंह	32
6.	कवि समीक्षक डॉ. सुधेश – डॉ. राजेन्द्र गंगाधरराव मालोकर	56
7.	यथार्थ बोध के सजग कहानीकार अमरकांत – डॉ. श्यामप्रकाश आ. पांडे	63
8.	मोहन राकेश की कहानियों में व्यक्त महानगरीय जीवन – प्रा. डॉ. पूनम त्रिवेदी	72
9.	'साँझ हो गई' उपन्यास में गांधीवाद..... – डॉ. जगदीश चव्हाण	80
10.	शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यासों में अभिव्यक्त बाल विमर्श – प्रा. देवेंद्र नारायण बोंडे	90

यथार्थ बोध के सजग कहानीकार अमरकांत

– डॉ. श्यामप्रकाश आ. पांडे

भारत अंग्रेजों की गुलामी से तो स्वतंत्र हो गया, लेकिन क्या सचमुच भारतीय समाज पूर्ण रूप से आज भी स्वतंत्र है, इस संदर्भ में हिंदी के मूर्धन्य साहित्यकार अमरकांत ने सवालिया निशान लगाते हुए पूछा था कि, ""प्रश्न यह है कि जब समाज में गरीबी, शोषण, गुलामी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार, झूठ आदि हावी हों, वैसी स्थिति में स्वतंत्र व्यक्ति कौन होगा? आखिर साहित्य में इस प्रकार का नारा क्यों दिया जाता है?"[1] यह कहने का साहस केवल वही व्यक्ति कर सकता है, जो समाज के यथार्थ को केवल देखता ही नहीं बल्कि उसे भीतर से महसूस कर सकता है। स्वतंत्रता के पूर्व अपने अध्ययन काल से लेकर अपनी अंतिम श्वास तक उन्होंने भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं के यथार्थ को समझने और अपनी रचनाओं के माध्यम से उस यथार्थ बोध को जनमानस तक पहुँचाने का जो महती कार्य किया है, वह निश्चित रूप से युगों तक भारतीय समाज को एक दिशा देता रहेगा, इसके संदर्भ में कोई दो राय नहीं हो सकती है। अमरकांत की रचनाओं में अभिव्यक्त यथार्थ बोध के बारे में उनकी स्वयं की स्पष्ट राय रही है कि, "जो आपके सामने घटित हो रहा है सिर्फ वही रचना नहीं है बल्कि उसे देखकर, अपने चारों ओर देखने के बाद आपके भीतर जो घटित हो रहा है, वह रचना है।"[2] यथार्थवादी कला कलाकार के समक्ष यथातथ्य चित्रण का आवाहन करती है, उस संदर्भ में पश्चिमी विद्वान एमिल पांग लिखते हैं कि "यथार्थवादी कला का तात्पर्य है – जीवन और जगत को यथातथ्य और निष्पक्ष भाव से देखना और उस प्रकार उसका चित्रण करना।" लेकिन अमरकांत यथार्थ के साथ ही साथ और भी अनेक बातों को साहित्य सृजन के लिए आवश्यक मानते रहे,

–हिंदी विभागाध्यक्ष, कला,वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, आर्वी, जि.वर्धा

इसलिए वे कहते हैं कि, ".... वास्तव में जिसे साहित्य कहते हैं, उसका सृजन किसी राजनैतिक फार्मूले, विधि निषेधों अथवा कर्मकाण्डों के आधार पर नहीं होता, बल्कि उसके पीछे गहरी संवेदना, सामाजिक यथार्थ की समझदारी और ऐतिहासिक एवं प्रगतिशील जीवन दृष्टि होती है।"[3] यही कारण है कि उन्हे प्रेमचंद की परंपरा का कहानीकार माना जाता है।

अमरकांत स्वयं स्वतंत्रता सेनानी रहे थे। स्वतंत्रता के लिए किए जानेवाले प्रयत्नों में उन्होंने हिस्सा लेना आरंभ किया। अपने क्रांतिकारी मित्रों के साथ रहकर कार्य भी किया किंतु अध्ययन करते हुए महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरु के विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने उग्र क्रांतिकारी गतिविधियों में सम्मिलित न होते हुए जनता को जागृत करने की दिशा में अपने कदम बढ़ाने का फैसला किया था। अमरकांत याज्जीवन समाज जीवन के यथार्थ को अपने साहित्य के माध्यम से निरंतर रूपायित करते रहे, साथ ही उनकी कहानियों में सजगता भी निरंतर बनी रही, इसकी प्रतीति उनके साहित्य को विवेचन–विश्लेषण करने से होती है।

बेरोजगारी भारतीय समाज का एक ऐसी समस्या है, जिसने अन्य अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। भष्ट्राचार का मूल में भी बेरोजगारी ही दिखाई देती है। इस व्यवस्था में शिक्षा क्षेत्र भी ऐसे युवाओं की भीड़ जमा कर रहा है जिसमें योग्यता की कमी नहीं है किंतु योग्य शिक्षा की कमी है। आज भी रट्टू तोता पद्धति हमारे शिक्षा व्यवस्था का मूलाधार बनी हुई है। अमरकांत रचित 'इंटरव्यू' कहानी में जहाँ भारतीय व्यवस्था में व्याप्त लालफिताशाही का वर्णन देखने मिलता है। वही भारतीय बेरोजगार युवाओं की समस्या का चित्रण भी किया गया है। साठ रुपये की क्लर्की वाले एक पद के लिए लगभग साढ़े तीन सौ युवाओं की भीड़ है। उनमें से अनेक युवा योग्य भी नहीं है, केवल जनरल नॉलेज की पुस्तकें हाथ में लिए घूमते हैं। उन युवाओं में जानकारी का हाल यह होता है कि स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति के नाम पर भी संशय की स्थिति बनी हुई है। उसका पता

नौकरी के लिए आए एक होमियोपैथ डॉक्टर के बयान से होता है, जब वह कहता है कि, "लोग आजाद होने पर भी गवर्नर जनरल और राष्ट्रपति का भेद नहीं समझते इन दोनों में उतना ही भेद है जितना राजेन्द्र बाबू और राजा जी में। माननीय श्री चकवर्ती राजगोपालाचारी को राजा जी इसलिए कहा जाता है कि वे देश के राजा है, यानी राष्ट्रपति है, चाहे तो कोई दस–दस रुपये की बाजी लगा ले।"[4] इस प्रकार से कहानी भारतीय समाज की अनेक समस्याओं की ओर अंगुली निर्देश करती है।

भारतीय समाज में आज भी मानवीय स्वभाव संवेदना से परे सामाजिक विधि–निषेधों के आधार पर ही सोचने–विचारने का आदि है। मनोवैज्ञानिक रूप से समाज मानव की ओर देखने और उसे समझने की विधि का सहारा लेने में समाज की न रुचि है न ही प्रयास। प्रत्येक को अपनी समस्या का समाधान स्वयं ही खोजना होता है। समस्या की शिकायत करनेवाले को ही अक्सर समाज दोषी मानने लगता है। 'गले की जंजीर' कहानी ऊपर से तो एक हास्य–विनोद प्रधान कहानी है। जिसमें कहानी के नायक शर्मा के गले में पड़ी सोने जंजीर चुरा ली जाती है। जिसके संदर्भ में पूछने पर प्रेस का प्रत्येक कर्मचारी, मिश्र दादा, मैनेजर गुलजारी लाल, रामविलास, प्रधान सम्पादक, जोसफ, परेश बैनर्जी, ठाकुर कुलदीप सिंह अपनी–अपनी ओर से सलाह देते है। कुछ तो सीधे–सीधे आरोप ही लगा देते है, कि चोरी की बात ही झूठ है। एक यथार्थ भी सामने आता है कि सामान्य व्यक्ति किस प्रकार से व्यवस्था में फँसकर अपनी मूल समस्या बताने से भी डरने लगता है। कहानी में व्यंग्यात्मक रुप में संवेदनहीनता की स्थिति दिखाई पड़ती है, अधिकारियों तथा मालिकों के लिए उस व्यक्ति की सोने की जंजीर की क्या कीमत है तथा किस प्रकार से एक गरीब व्यक्ति जिसकी एक छोटी इच्छा भी गले की जंजीर बन जाती है।

समाज में बहुत बड़ा मध्य वर्ग है। मध्यवर्ग में नौकरीपेशा ऐसा वर्ग है, जिसकी आमदनी पूरा महिना बिताने के लिए अपर्याप्त होती है। ऐसे

परिवार पति–पत्नी के आपसी सहयोग से गुजारा कर लेते है। 'केले, पैसे और मूँगफली' कहानी में महंगाई की समस्या से जूझते नौकरीपेशा मध्य वर्ग के परिवार का यथार्थ चित्रण किया गया है। महिने की आखिरी तारीख पर बेटे के केले माँगने पर आनन्दमोहन उसे पीट देता है। पत्नी सुमंगला के समझाने की कोशिश करने पर आनन्दमोहन भड़क भी जाता है। पति–पत्नी के बीच पैसे न होने को लेकर नोक–झोंक भी होती हैं। अंततः रद्दी अखबार बेचकर जो छः आने मिलते है उससे आनन्दमोहन परिवार के लिए थोड़ी–सी चीजें खरीद लाता है, तो मानो घर में खुशियाँ की बहार आ जाती है। कहानी में गरीबी, मध्यवर्ग की संकोचशील वृत्ति तथा उसकी समाधानी प्रवृत्ति का यथार्थ चित्रण दिखाई पड़ता है। सुख का मूल सीमित साधनों में खुशी–खुशी जीवन बिताने निहित है, यह भारतीय दर्शन का एक ऐसा पहलू है, जिसके चलते पारिवारिक व्यवस्था बची रह सकती है। दस रुपये की शर्त के बदले दो पैसे की मूंगफली लेकर "सुमंगला ने मुस्कराते हुए स्नेह से एक क्षण अपने पति की आँखों में देखा, और फिर एक मूँगफली को जोकर की भाँति मुँह करके दाँतों से फोड़ कर बोली, "हाँ जी, ये दस रुपये की नहीं, मेरे लिए तो दस हजार की रुपये की है।"[5]

अत्यंत कम आमदनी वाले परिवारों के पास वैसे भी संपत्ति के नाम पर बहुत कुछ नहीं होता है। मानवीय जीवन में समय–असमय आपत्तियाँ आना अत्यंत सामान्य बात है। देश में अत्यधिक जनसंख्या के चलते बहुत बड़ा वर्ग वर्षों तक संविदा नौकरियों के भरोसे जीवन निर्वाह करता है। इस वर्ग में अचानक नौकरी का चला जाना आम बात है। परिवारों के सामने अर्थाभाव की समस्या निर्माण होती हो जाती है और ऐसे में रोजमर्रा की जरुरतों की पूर्ति अत्यंत कठिनाई से होती है। 'दोपहर का भोजन' कहानी में नौकरी से छँटनी के कारण मुंशीजी के परिवार के समक्ष भी ऐसी ही परिस्थिति निर्माण हो जाती है। परिवार के सदस्यों में अनजाने एक भय निर्माण हो जाता है। पति–पत्नी के बीच भी दो दिन तक कोई वार्तालाप

नहीं होता है। लेखक सिद्धेश्वरी की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि, "सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे ! वह चाहती थी कि सभी चीजें ठीक से पूछ ले, सभी चीजें ठीक से जान ले और दुनिया की हर चीज पर पहले की तरह धड़ल्ले से बात करे। पर उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उसके दिल में न जाने कैसा भय समाया हुआ था।"[6] आर्थिक अभाव का ऐसा यथार्थमय दारुण चित्रण मानवीय संवेदनाओं को झंझोड़ने के लिए पर्याप्त है। परिवार के सभी सदस्य इस अवस्था को समझते हैं। ऐसे समय में परिवार में एक–दूसरे के प्रति प्रेम और अपनत्व की भावना ही परिवार को बचाये रख सकती है। यह बात सिद्धेश्वरी जानती है और संपूर्ण परिवार की धूरी बनकर परिवार की हिम्मत को बढ़ाने और बचाये रखने का प्रयत्न करती है।

मानवीय जिजीविषा के बल पर संसार भर में कितने ही लोग कठिन और दूभर परिस्थितियों में भी जीवन जी रहे हैं। संसार में मानवाधिकारों की बात करने वाला सभ्य समाज भी ऐसे लोगों का शोषण करना जानता है। समाज में केवल जीवित रहने के लिए मनुष्य को कैसी–कैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। अमरकांत रचित 'जिंदगी और जोंक' कहानी में रजुआ के माध्यम से उसी जीवटता का वर्णन लेखक ने किया है। सभ्य समाज की सोच का वर्णन लेखक ने किया है। साड़ी की चोरी का इल्जाम रजुआ पर लगाकर उसे खूब पीटने के बाद साड़ी जब घर में मिल जाती है तो शिवनाथ लेखक से कहते हैं कि, "इस बार तो साड़ी घर में ही मिल गयी है, पर कोई बात नहीं। चोर–सियार तो डाँट–डपट पाते ही रहते हैं। अरे, इस पर क्या पड़ी है, चोर–चाई तो रात–रात भर मार खाते हैं और कुछ भी नहीं बताते।" फिर बाई आँख को खूबी से दबाते हुए दाँत खोल कर हँस पड़े, "चलिए साहब, नीच और नींबू को दबाने से ही रस निकलता है।" निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि समाज में कमजोर लोगों के शोषण की सदियों से चली आ रही प्रवृत्ति आज भी बनी हुई है। रजुआ मोहल्ले में रहते हुए अनेक बार बीमार पड़

गया। शोषण करने वालों का काम नहीं सधने पर उन्होंने उसे दुरदुरा दिया परंतु रजुआ ने मुहल्ला नहीं छोड़ा। रजुआ के मरने का समाचार सुनकर लेखक को भी संतोष ही हुआ। लेकिन पर बाद में यह ज्ञात होने पर, कि रजुआ के मृत्यु का समाचार स्वयं रजुआ ने ही अपने काका को भिजवायी थी, लेखक को बहुत आश्चर्य हुआ। जिसके बारे में लेखक लिखते हैं कि, "उसके मुख पर मौत की छाया नाच रही थी और वह जिन्दगी से जोंक की तरह चिमटा था लेकिन जोंक वह था या जिन्दगी? वह जिन्दगी का खून चूस रहा था या जिन्दगी उसका ? .. मैं तय न कर पाया।"[8]

मानव समाज का एक तबका, जो स्वयं को बहुत बड़ा बुद्धिवादी मानता है। जो देश में हर प्रकार की कमियाँ ही कमियाँ ही देखता है। समाज–सुधार में योगदान करने के बदले केवल बहसों में हिस्सा लेकर जीतने की फिराक में रहता हैं। गरीब और कमजोरों के प्रति जिनके दिल में असंवेदनशीलता दिखाई देती है। वे ही दूसरों पर स्वार्थी होने का दोषारोपण करते हुए दिखाई पड़ते है। यह हमारे समाज का एक ऐसा यथार्थ है, जिसे हम आस–पास खुली आँखो से देख सकते हैं। 'देश के लोग' कहानी का नायक अखिल भी कुछ–कुछ ऐसा बुद्धिवादी है। जिसका वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं कि, "वह एक लोकप्रिय अध्यापक था, अर्थात् वह अक्सर नये–नये फैशन के कपड़े पहनकर आता, शरारती लड़को से दोस्ताने ढंग से बोलता, पढ़ाते वक्त कवियों और लेखकों की प्रेम–लीलाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन करता और गैर हाजिर छात्रों की हाजिरी बना देता। शहर के प्रसिद्ध लेखकों चित्रकारों, पत्रकारों वगैरह से उसका घनिष्ठ परिचय था और उसकी शाम अक्सर किसी कॉफी हाउस या रेस्तराँ में गप–शप और बहस–मुबाहिसा करते बीतती थी।" अखिल सोचता है कि, "इस देश के लोग काहिल है कामचोर है, इसलिए न यहाँ कोई अच्छा कलाकार है, न कोई अच्छा वैज्ञानिक, अच्छी शासन व्यवस्था है, न अच्छे नागरिक है.. "[9] यही अखिल रिक्शेवाले को तुच्छता से देखता है और रिक्शे में साथ बैठे बूढ़े की किसी बात का जबाव न देकर मुँह

पलटाकर बैठ जाता है। बूढ़े के भाई साहब के सम्बोधन के साथ समय पूछने पर, " उसको लगता है कि वह शख्स यह प्रदर्शित करना चाहता है कि वह शिक्षित और बराबरी के स्तर का है, नहीं तो उन हजरत को समय से क्या मतलब हो सकता है?"[10] अखिल जब रिक्शे से उतरता है और उसका सहयात्री वहीं रास्ते पर गिर पड़ता है तो अखिल तुरन्त वहाँ निकल जाता है। रास्ते में उस यात्री का ध्यान जाने पर वह सोचता है कि,".. शायद वह मर गया हो.. मरा नहीं बेहोश हो गया था... परन्तु वह रास्ते में उसका मोहल्ला क्यों पूछ रहा था ? उसको लगा कि उसके दिल कहीं दुःख और पश्चाताप का भाव भर रहा है। परन्तु उसको उंसने जल्दी ही उड़ा दिया। ये सब बेकार की बाते हैं। यह सब सोचना उसका भ्रम है और यदि मान लिया जाय कि उसने सही–सही जबाव दिया होता तो उसकी यह हालत नहीं होती? मौत सबकी होती, इसमें कोई खास बात क्या है?"[11] यह बुद्धिजीविता धीरे–धीरे शिक्षा के प्रचार और प्रसार के साथ–साथ समाज में तेजी से फैलती जा रही हैं।

अवसरवादिता ने मानव समाज में एक मूल्य का रूप धारण कर लिया है। सभी क्षेत्रों में इसका बोलबाला दिखाई देता है। राजनीति ने इस क्षेत्र को निरंतर व्यापक ही किया है। इन अवसरवादियों से राजनीतिज्ञों को लाभ मिलता है। अवसरवादियों को विभिन्न समितियों में बिठाकर अपने लिए वोट देनेवालो का इंतजाम करने का कार्य कुछ लोगों द्वारा किया जाता है। समय पड़ने पर ऐसे ही लोग उन्हें बड़े पदों पर पहुँचने में मदद करने का कार्य करते हैं। उन्हीं अवसरवादियों के कारण अनेक बार प्रतिभाशाली लोगों को स्थान नहीं मिल पाता है। 'कला प्रेमी' कहानी में सुमेर और सुबोध राय के माध्यम से इसी यथार्थ का लेखक ने परिचय कराया है कि कला के लिए अपना जीवन समर्पित करना आदर्शवादिता ही होती है। "मरकर यश प्राप्त करने की इच्छा सुमेर में कभी बड़ी ही तीव्र थी। ऐसे ही आदर्शवादी विचार से प्रेरित होकर उसने कला की दुनिया में कदम रखा था। उसने घोर परिश्रम किया और उसे पुरस्कार भी मिला।

पर इससे क्या? चार–पाँच वर्ष तक उसने अपार कष्ट और घोर तिरस्कार सहे और अन्त में भुखमरी की गौरवशाली स्थिति से भी गुजरने लगा।"[12](पृ.418–19) ऐसी स्थिति में अध्ययन करते हुए विनोबा भावे के विचार 'धर्म और विज्ञान के समन्वय से भारत तरक्की कर सकता है' से प्रेरणा लेकर सुमेर ने आत्मदर्शन तैयार किया कि, "कला की दुनिया में आज स्वाद और परहेज के समन्वय की जरूरत है।" उसी दर्शन पर चलते हुए उसने वह मुकाम हासिल किया है कि कला जगत के समीक्षक उसे "कला जगत का जगमगाता सितारा कहते है।" अत्यंत मीठे वचनों और समयसूचकता के माध्यम से विभिन्न समितियों में भी वह अपना स्थान निश्चित करा चुका है। उसके विपरीत कभी कला जगत में अपना स्थान बनाने वाले सुबोध राय को सत्य कह देने की बुरी आदत ने पीछे धकेल दिया। कभी उसका प्रशंसक रहा सुमेर भी ऐसे खतरनाक आदमी से दूर रहने में ही अपनी भलाई मानता है।

इस प्रकार से अमरकांत ने अपने कहानियों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ रूपायित किया है। यही कारण है कि अमरकांत को प्रेमचंद की परंपरा का लेखक माना गया। साथ ही यह भी सत्य है कि अमरकांत का कहानी साहित्य मध्यम वर्ग के जीवन यथार्थ को अत्यंत सेंध हुए ढंग से पाठक के मनोमस्तिष्क तक पहुँचा देता है।

.....

संदर्भ–सूची :

1. अमरकांत से डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र की बातचीत–साक्षात्कार, अमरकांत वर्ष एक, संपादक – रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया एवम् नरेश सक्सेना, पृष्ठ क्रमांक–110

2. अमरकांत – कृतित्व एवं व्यक्तित्व की पड़ताल, सम्पादक–रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया, इलाहाबाद प्रेस प्रकाशन–1977, पृष्ठ संख्या–107

3. अमरकांत से डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र की बातचीत–साक्षात्कार, अमरकांत वर्ष एक, संपादक – रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया एवम् नरेश सक्सेना, पृष्ठ क्रमांक–108

4. 'इंटरव्यू' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1,प्र.भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013, पृ.18

5. 'केले, पैसे और मूँगफली'कहानी अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र.भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013,पृ. 61

6. 'दोपहर का भोजन' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013, पृ.67

7. जिंदगी और जोंक' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013, पृ.71

8. जिंदगी और जोंक' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013,पृ86

9. 'देश के लोग' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013, पृ.234

10. 'देश के लोग' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013 ,पृ.236

11. 'देश के लोग' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013, पृ.239

12. 'कला प्रेमी' कहानी, अमरकांत की संपूर्ण कहानियाँ, भाग–1, प्र.भारतीय ज्ञानपीठ, सं.2013, पृ.418–19